Nav Jyoti, Vol. 5, No. 10, January-June 2017 ISSN : 2249-7331

राष्ट्र निर्माण में स्वामी विवेकानन्द की भूमिका

डॉ0 अनिल प्रताप सिंह*

सारांश

विवेकानन्द के जीवनकाल में भारत दासता के बन्धन में जकड़ा हुआ था। चारो तरफ दुखः एवं दरिद्रता का राज्य फैला हुआ था। उनका मानना था कि इस दुख एवं दरिद्रता का कारण जनता का शक्ति एवं आत्मविश्वास खो देना है। अतः जीवनपर्यन्त उनका यह प्रयास रहा है कि जनता शक्ति उनसे अर्जित करे और यह शक्ति उनके मतानुसार धर्म और चरित्र का निर्माण करने वाली शिक्षा मिलने पर ही सम्भव थी। इस प्रकार उन्होने अशिक्षा को अपने देश की गरीबी दरिद्रता एवं दुख का कारण बतलाया और भारत के नागरिकों की शिक्षा कैसी हो इस पर अपने विचार भी व्यक्त किये। विदेशों में घूम–घूम कर उन्होने हिन्दू धर्म की महानता को फैलाया और अपने देश का मान बढ़ाया।

विवेकानन्दजी का पहले नेरन्द्रनाथ अथवा नरेन नाम था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा बंगाली और अंग्रजी में हुई। उनकी माँ उन्हें महाभारत और रामायण की कहानियाँ सुनाया करती थी। वे रामायण को बड़े चाव से सुनते थे और राम के चरित्र में विशेष रूचि लेते थे। जहाँ कहीं राम कथा होती वे वहाँ दिखाई पड़ते थे और कभी–कभी उसमें इतने अधिक तल्लीन हो जाते थे कि खेल–कूद सब भूल जाते थे। एक बार तो वे अपने मकान के एक कोने में कमरा बन्द करके ध्यान में ऐसे डूब गये कि दरवाजा तोड़कर ही उनको जगाना पड़ा। इस प्रकार उनमें बचपन से ही यौगिक चेतना के लक्षण दिखलायी पड़ने लगे थे। सोते समय उन्हें विचित्र प्रकार का अनुभव होता था जिसमें उन्हे भवों के मध्य प्रकाश का केन्द्र अनुभव होता था जिसके रंग बदलते रहते थे और जो फैलकर फूट जाता था और समस्त शरीर को प्रकाश से भर देता था। इस अनुभव से यह स्पष्ट होता है कि नरेन्द्रनाथ में अत्यधिक में अत्यधिक अत्यधिक आध्यात्मिक शाक्ति थी। किन्तु दूसरी ओर वे बहुधा अत्यधिक शैतानी के काम भी करते थे। उनकी शैतानियों से कभी – कभी उनकी माता इतनी अधिक परेशान हो जाती थी पास अपना एक राक्षस भेज दिया। वह घर के नौकर–चाकरों में मिल जुल कर कर रहते थे। कोचवान से उनकी विशेष मैत्री थी और वे आगें चलकर कोचवान बनने की साचते थे।

6 वर्ष की आयु में नरेन्द्रनाथ को पाठशाला में बैठाया गया। यहाँ पर उन्होंने एक वर्ष के अन्दर ही मुग्ध बोध को कंठाग्र कर दिया। उन्होनें रामायण और महाभारत के भी बहुत से अंश याद कर डाले। एक ही वर्ष बाद उन्हें ईश्वर चन्द्र विद्यासागार की शैक्षिक संस्था में दखिल किया गया। यहाँ पर उनके सभी शिक्षक उनकी बुद्धि और प्रतिभा से अत्यधिक प्रभावित हुए और वे उनकी प्रशंसा करते नहीं थकते थें। नरेन्द्रनाथ पढ़ने लिखने में ही आगें नहीं थे। बल्कि खेल–कूद में भी आगे रहते थे। वे ह्यष्ट–पुष्ट थे और अच्छे खिलाडी माने जाते है। ऐन्ट्रेन्स की कक्षा तक पहुँचते– पहुँचते नरेन्द्रनाथ ने अग्रेंजी और बंगाली साहित्य तथा भारतीय इतिहास का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया। उनकी सूझ–बूझ और स्मृति अत्यन्त तीव्र थी। वे केवल कुछ पंक्तियों को ही पढकर लेखक का मन्तव्य समझ जाते थे। किसी पुस्तक को पढते समय वे कुछ पंक्तियों को ही पढकर और कुछ पृष्ठ देखकर सम्पूर्ण पुस्तक का ज्ञान लेते थे। उन्होंने ऐंन्ट्रेन्स की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। इसके बाद उन्होंने प्रेसीडैन्सी कॉलिज में प्रवेश किया। यहाँ पर भी उनके सभी शिक्षक उनसे अत्यधिक प्रभावित हुए। उनके प्रधानाध्यपक डब्लू0 डब्लू0 हैस्टी तो यहाँ तक कहते थे कि उन्होने अपने जीवन में ऐसा मेधावी कोई भी छात्र नहीं देखा। कॉलिज नें नेरन्द्रनाथ ने अग्रेजी सहित्य, यूरोपीय इतिहास दर्शन, विज्ञान, काल, संगीत, औषधि, इत्यादि विविध विषयों का गहन ज्ञान प्राप्त किया। इस प्रकार उनकी प्रतिभा अत्यधिक बहुमुखी और व्यापक थी।

* एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, हरिश्चन्द्र पी0जी0 कालेज, वाराणसी

विवेकानन्द जी का कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति को वीर, निर्भय एवं कर्मठ होना चाहिए क्योंकि डरपोक एवं उदासीन व्यक्ति जीवन में कोई भी कार्य नही कर सकता। अतः मनुष्य मात्र को उन्होने ये सन्देश दिया था तुम वीर बनो, तुम निर्भय बनो, भय को दूर करो, भय पाप है उसका जीवन में कोई स्थान नहीं है। इस प्रकार उनका कहना था कि जो व्यक्ति संघर्ष करता है उसी में चैतन्य का विकास होता है और जो संघर्ष नही करता वह अन्धकार मे रहता है उनमे चेतना का प्रकाश नहीं दिखायी देता। बचपन से ही वह गरीब – दुखी, साधु – सन्यासी के प्रति आकर्षित थे। कहां भी जाता है कि अमरीका मे उन्होने एक पत्र में लिखा था कि मै गरीब हूॅ और गरीबों को मै प्यार करता हूॅ। उदारता और दान में वे अपने पिता के समान थे। बचपन से ही वह निडर, प्रसन्नचित्र, खेल–कूद में मग्न रहते थे। घर पर कई साथियों के साथ पढ़ते और खेलते थे। एक बार जो सुनते या पढ़ते थे याद हो जाता था। एक प्रकार से सोचा जाय तो लगता है कि उन पर ईश्वरीय वरदान था। वेदान्त हमें आत्म संयम की ओर प्रेरित करता है। मनुष्य मात्र के जीवन में एक ऐसा समय आता है, जब संसार के प्रति वितृष्णाा आ जाती है तथा उसका पीड़ाजनक अनुभव हृदय पर अधिकार जमा लेता है। ऐसा जान पड़ता है कि पाश्चात्य देशों में यह संसार–विरक्ति का भाव फैलना आरम्भ हो गया है। वहां भी विवेकवान विचारशील महान व्यक्ति है जो धन और बाहुबल को मिथ्या समझने लगे है। वे अपनी इस व्यापार वाणिज्य प्रधान सभ्यता की पाशविकता से तंग आ गये है और इससे अच्छी परिस्थिति में पहुॅचना चाहते है। वहाँ के विचारशील मनुष्यों को हमारे वेदानत में उन विचारों की नयी चेतना मिली है जिनकी खोज में वे रहें हैं और विशेषकर जिनकी भूख और प्यास से वे व्याकुल से रहें हैं और ऐसा होने में कुछ अनोखापन या आश्चर्य नहीं है। क्योंकि हम आत्म संयम की बात करते है, इन्द्रिय सुख से परे आत्मसुख की चाह करते है जिसमें अपने कष्ट को गौड़ और दूसरों की पीडा के अनुभव की बात कही गयी है यह तभी संभव है जब हम आत्म संयमित हो स्वअनुशासित हो क्योंकि हमे कोई तब तक नही सुधार सकता जब तक हम स्वयं सुधरने की बात न सोचे इस प्रकार वेदान्त मूल तत्व की व्याख्या कर यह स्पष्ट करता है कि सच्चा सुख आत्म संयम एवं संतोष है जैसा कहा गया है–

गोधन, गजधन, वाजिधन, और रतनधन खान
जब आवे संतोषधन सब धन धूरि समान।।

स्वामी जी ने कहा हमारा धर्म ही सच्चा है। हमारे धर्म की सर्वोच्च शिक्षा है त्याग जहॉ यह सिखाया जाता है कि यदि किसी के हित के लिए अपना सर्वस्व त्याग करना पडे तो हमे गर्व का अनुभव करना चाहिये। जो सिखाता है कि भोग विलास की लालसा को त्याग दो, संसार की माया में न लिपटों यही धर्म का मार्ग है। त्याग के द्वारा ही तुम अपने अभीष्ट तक पहुंच सकते हो भोग विलास के द्वारा नहीं वेदान्त ने सांसारिक वस्तुओं की निःसरता सिद्ध की है। जैसे एक बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी इस तरह कितने ही राष्ट्र दुनिया के रंग मंच पर आये और कुछ दिनों तक बड़े जोशो खरोश के साथ अपना नाट्य दिखाकर लगभग बिना एक भी चिन्ह अथवा लहर छोड़े काल के अनन्त सागर में विलीन हो गये। तभी कबीर ने कहाः–

'' का मॉगू कछु थिर न रहायी
देखत नैन चला जग जाई''

अर्थात जब सब कुछ नाशवान है तो इसका मोह क्यों? इसके त्याग में ही सुख की अनुभूति छुपी है हमे यह सिखाया जाता है कि कम से कम में हमारा काम चल सकता है। तो अधिक के लिए संग्रह क्यों किया जाये मै वेदान्त सिर्फ वेदान्त को ही सर्वजनीन मानता हूॅ। क्योंकि और जो भी धर्म है वे उनके संस्थापकों के जीवन के साथ सम्पूर्णतः संश्लिष्ट और सम्बद्ध है। परन्तु हमारा धर्म इन्हीं कुछ प्रमुख तत्वों की नीव पर खड़ा है। पृथ्वी पर कोई भी व्यक्ति स्त्री हो या पुरूष वेदों के निर्माण का दम नहीं भर सकता अनन्तकाल स्थायी सिद्धांतों द्वारा इसका निर्माण हुआ है। समस्त धर्म ग्रन्थों में एक मात्र

वेदान्त ही ऐसा एक धर्म ग्रन्थ है जिसकी शिक्षाओं के साथ अन्तः– वाह्य प्रकृति के वैज्ञानिक अनुसंधान से प्राप्त परिणामों का सम्पूर्ण सामंजस्य है। जिसमे अध्यात्म एवं विज्ञान दोंनो की विकास की बात की जाती है। अत्यन्त प्राचीन समय में समान आकार प्रकार, समानवंश और सदृश्य भावों से पूर्ण दो विभिन्न मेधाएं भिन्न–भिन्न मार्गो से संसार के तत्वों को अनुसंधान करने को प्रवृत्त हुई। एक प्रचीन मेधा हिन्दू है। और दूसरी प्रचीन युनानीमेधा युनानी जगत के लोग वाह्य जगत का विश्लेषण करते हुए उसी अंतिम लक्ष्य की ओर अग्रसर हुये थे और हिन्दू भी अर्न्तजगत् का विश्लेषण करते हुए। आगे बढ़े इसका विश्लेषण करने से मालुम होता है कि दोनो ने उस सुदूर चरम लक्ष्य पर पहुंचकर एक ही प्रकार की प्रतिध्वनि की है इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक भौतिक विज्ञान के सिद्धांतों को केवल वेदान्ती ही अपने धर्म के साथ समांजस्य पूर्वक ग्रहण कर सकते है इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वर्तमान भौतिकवाद अपने सिद्धांतों को छोड़े बिना यदि केवल वेदान्त के सिद्धांत को ग्रहण कर ले तो आप ही आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो सकता है। आधुनिक भौतिक विज्ञान उन्हीं निष्कर्षो तक पहुंचा हैं जिन तक वेदान्त युगों पहले पहुंच चुका था। पश्चात्य देशों के कई बड़े–बड़े वैज्ञानिकों ने मुझसे स्वय वेदान्तों की युक्तिपूर्णता की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है उनके कथनानुसार वेदान्त की सब बातें ऐसी विज्ञान सम्मत है कि वे वर्तमान वैज्ञानिक युग की आंकाक्षाओं को ऐसी सुन्दरता के साथ पूर्ण करती है कि आधुनिक विज्ञान बड़े–बड़े अनुसंधान के बाद जिन सिद्धांतों पर पहुंचता है। उनसे इनका ऐसा सामंजस्य है कि हम उसकी ओर अनायास आकृष्ट हो जाते है। जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि विना अन्तः वह वाह्य के सामंजस्य के मानव का कल्याण नहीं हो सकता है।

स्वामी जी ने कहा भारत की सीमाओं में भी पृथक–पृथक उप जातियों मे धर्म सम्बन्धी प्रधान्ता पाने की चेष्टा हुई थी और सम्भवतः भारत वर्ष में भी प्राचीन आर्य जाति की विभिन्न शाखाओं ने परस्पर अपने–अपने देवता की प्रधानता स्थापित करने की चेष्टा की थी। परन्तु भारत का इतिहास दूसरे प्रकार का होनेा था उसे यहूदियों के इतिहास की तरह नही होना था। समस्त देशों में भारत को ही सहिष्णुता और अध्यात्मिकता का देश होना था और इसलिए यहॉ की विभिन्न उपजातियों या सम्प्रदायों में अपने देवता की प्रधानता का झगड़ा दीर्घकाल तक नहीं चल सका। जिस समय का हाल बताने में इतिहास असमर्थ हैं। यहॉ तक की परम्परा भी जिसका कुछ आभास नहीं दे सकती। उस अति प्राचीन युग में भारत में एक महा पुरूष प्रकट हुयें। जिन्होंनें घोंषित कियाः– एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अर्थात संसार में एक वस्तु (ईश्वर) है। ज्ञानी लोग उसी का नाम नाना रूपों में वर्णन भी करते है। ऐसी चिरस्मरणीय पवित्र वाणी संसार में कभी और कही उच्चारित नहीं हुई थी, ऐसा महान् सत्य इसके पहले कभी आविष्कृत नही हुआ था। और यही महान् सत्य हमारे हिन्दू राष्ट्र के राष्ट्रीय जीवन का मेरूदण्ड स्वरूप हो गया। सैकडों सदियों तक एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति इस तत्व का हमारे यहॉ प्रचार होते–होते हमारा राष्ट्रीय जीवन उससे ओत–प्रोत हो गया है। यह सत्य सिद्धांत हमारे खून में मिल गया है और वह जीवन के साथ एक हो गया है। हम लोग इस महान सत्य को बहुत पसंद करते है। इसी से हम धर्म सहिष्णुता का एक उज्जवल उदाहरण बन गये है। यहॉ और केवल यही लोग दूसरे धर्म के मानने वालों के लिए मस्जिद, गिरजाधर, उपसनागृह आदि बनवा देते है। समग्र संसार हमसे इसकी शिक्षा लेता है। विदेशो में कितना परधर्म विद्वेष है विदेशों में तो कई जगह मैने लोगों में दूसरों के धर्म के प्रति ऐसा घोर विद्वेष देखा कि उनके आचरण से मुझे जान पड़ा कि यदि ये मुझे मार डालते तो भी आश्चर्य नहीं। धर्म के लिए किसी व्यक्ति की हत्या करना उनके लिए मामूली बात है। पाश्चात्य देशवासी हिम्मत बांधकर अपने देश के प्रचलित धर्ममत के विरूद्ध कुछ कहे तो उसे समाज बहिष्कार का भयानकतम रूप स्वीकार करना पड़ेगा।

आधुनिक सभ्यता के अन्दर इस भाव के प्रवेश करने पर उसका विशेष कल्याण होगा। वास्तव में सहिष्णुता के भाव का प्रवेश किये बिना कोई सभ्यता स्थायी नही हो सकती। जब तक धर्मोनमाद, खून

खराबी, और पाशविक अत्याचारों का अन्त नही होता तब किसी सभ्यता का विकास ही नहीं हो सकता है। जब तक हम लोग एक दूसरे के साथ सद्भाव रखना नहीं सीखते तब तक कोई सभ्यता सिर नहीं उठा सकती। और इस पारस्परिक सद्भाव वृद्धि की पहली सीढ़ी है– एक दूसरे के धार्मिक विश्वास के प्रति सहानुभूति प्रकट करना एक दूसरे का आदर करना केवल यही नही, वास्तव में हृदय के अन्दर यह भाव जमाने के लिए केवल मित्रता या सद्भाव से ही काम नही चलेगा, वरन् हमारे धार्मिक भावों तथा विश्वासों में चाहे जितना अन्तर हो हमें परस्पर एक दूसरे की सहायता करनी होगी भारतवर्ष में हम यही करते है। वे हमे चाहे जितनी घृणा से देखें, हम पर अत्याचार करे, चाहे जितनी निष्ठुरता दिखाये परन्तु जब तक हम अपने प्रेमबल से उन पर विजय न प्राप्त कर ले तब तक हमें प्रयास रत रहना चाहियें इसी में मानव मात्र का कल्याण निहित है।

11 सितम्बर सन् 1893 को कोलम्बस के हाल में धर्मो की संसद की कार्यवाही आरम्भ हुई। इस हाल में बड़े–बड़े प्रसिद्ध धार्मिक नेता उपस्थित थे किन्तु उपस्थित थे किन्तु उपस्थित जन समुदाय में अधिकतर की आँखे विवेकानन्द की ओर ही लगी थीं। उसी दिन संध्या को अध्यक्ष महोदय ने स्वामी विवेकानन्द से व्याख्यान देने की प्रार्थना की। भाषण आरम्भ करते विवेकानन्द ने ज्यों ही' अमरीका के भाईयो और बहनों' ये शब्द कहे सैकड़ों लोगों ने करतल ध्वनि से उनका स्वागत किया। संसद की समस्त औपचारिकताओं को छोड़कर स्वामी विवेकानन्द ने सीधी और स्पष्ट भाषा में अपने विचारों को इतने प्रभावशाली ढंग से उपस्थित किया कि संसद में उनकी धूम मच गई। इसके बाद लगभग एक दर्जन बार पुनः उनके भाषण हुए जिससे उन्हें पाश्चात्य जगत् में व्यापक ख्याति प्राप्त हुई। न्यूयार्क हैराल्ड ने उन्हें सुनने के बाद में हम यह अनुभव करते है। कि इस विद्वान राष्ट्र को मिशनरी भेजना कितना अधिक मूखतापूर्ण है। इस बीच स्वामी विवेकानन्द बराबर भारत की दुर्दशा की ओर पश्चिम का ध्यान आकर्षित करते रहे। एक भाषण ब्यूरो के निमंत्रण पर उन्होंने समस्त संसुक्त राष्ट्र अमरीका में घूमकर स्थान–स्थान पर भाषण किए जिनका अमरीका के बुद्धिजीवियों पर व्यापक प्रभाव पड़ा। उन्हे हारवर्ड विश्वविद्याालय में प्राच्य दर्शन और कोलम्बिया में सस्कृत विभाग के अध्यक्ष पर ग्रहण करने का निमंत्रण मिला किन्तु उन्होंने उसे यह कहकर ठुकरा दिया कि वे संन्यासी हैं।

इस प्रकार विवेकानन्द आध्यात्मिक और भौतिक मूल्यों का समन्वय करते है। उनके अनुसार भारत में एक ऐसी शिक्षा–प्रणाली की आवश्यकता है जो प्राचीन वेदान्त की परम्परा पर आधारित होते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति को जीविकोपार्जन के योग्य बनाएं, जिससे प्रत्येक स्त्री–पुरूष अपने– अपने व्यवसाय में उन्नति करें। व्यवसाय कोई भी बुरा नहीं है। छोटे से छोटा काम भी त्याग और सेवा की भावना से करने पर बड़े से बड़े काम के बराबर होता है। इस प्रकार की शिक्षा का सन्देश घर–घर में पहुँचाया जाना चाहिए। इसका अभाव ही हमारी वर्तमान दशा का कारण है। शिक्षा केवल विद्यालयों में ही नहीं बल्कि घरों में, खेतो में और कारखानों में भी होनी चाहिए। यदि बालक–बालिकाएं विद्यालय तक नहीं पहुँचते तो शिक्षक को स्वयं उन तक पहुँचना चाहिए। इस प्रकार शिक्षक केवल विद्यालय में बैठकर ही नहीं बल्कि घूम–घूम कर शिक्षा का प्रसार करें। वे स्थान–स्थान पर द्वार–द्वार पर जाकर घर–घर में शिक्षा फैलायें। इस प्रकार का आदर्श भारत को प्राचीन वानप्रस्थ और सन्यास की परम्परा में दिखलाई पड़ता है। विवेकानन्द ने गाँव–गाँव में शिक्षण फैलाने के लिए एक व्यावहारिक सुझाव यह दिया कि दो–दो तीन–तीन शिक्षक, कैमरा, ग्लोब, मानचित्र इत्यादि उपकरणों को लेकर गाँव– गाँव और मोहल्ले–मोहल्ले जायें, बालक–बालिकाओं को एकत्रित करें और उनको ज्ञान का प्रकाश दे। इस प्रकार से उससे कही अधिक तेजी से शिक्षा दी जाये और यह विद्यालयों में पुस्तकों से दी जाती है।

वे शिक्षा के माध्यम से सम्पूर्ण देश के प्रत्येक नर–नारी को जगाना चाहते थे, उसे शारीरिक, भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से सच्चे अर्थो में मनुष्य बनाना चाहते थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि

देश में शिक्षा के द्वारा क्रान्ति लाने के लिए वर्तमान शिक्षा–प्रणाली में थोड़ा–बहुत संशोधन करने से काम नहीं चलेगा। इसके लिए उसे आमूल बदलना पड़ेगा। इसके लिए हमें शिक्षा के लक्ष्यों, विधियों, पाठ्यक्रम और प्रत्येक अन्य बात पर फिर से विचार करना पड़ेगा। इस विचार में चरित्र–निर्माण पर ध्यान और शक्ति उत्पन्न करना सबसे अधिक आवश्यक है। शिक्षार्थी की एकाग्रता की शक्ति बढ़ने पर वह स्वयं ज्ञान के मार्ग पर आगे बढ़ेगा। यह एकाग्रता ब्रह्मचर्य से आयेगी। शिक्षा के कठिन मार्ग पर श्रद्धा के बिना नहीं बढ़ा जा सकता।

देश के दीन–हीन, दरिद्र और पिछड़े वर्गो की ओर ध्यान देते हुए विवेकानन्द ने भारतीय नारियों की ओर भी ध्यान दिया क्योंकि उनकी दशा पुरूषों से बहुत पिछड़ गयी थी। प्राचीन भारतीय परम्परा में स्त्री–पुरूष में कोई ऊँच–नीच नहीं माना गया हैं वे दोनों परस्पर पूरक माने गये हैं। उपनिषदों के काल में स्त्रियों में शिक्षा का व्यापक प्रचार था। अनेक स्त्रियों ने दर्शन और गणित जैसे विषयों में भी ख्याति प्राप्त की थी। स्वामी जी ने अपने व्याख्यान में यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि प्रेम बल से बड़ा कोई बल नहीं है प्रेम के आगें हिसंक पशु भी नतमस्तक हो जाता है तो मानव की बात ही क्या? विद्वेष की अपेक्षा प्रेम के द्वारा ही राष्ट्रीय जीवन स्थायी हो सकता है। केवल पशुत्व और शारीरिक शक्ति विजय नही प्राप्त कर सकती क्षमा और नम्रता ही संसार संग्राम में विजय दिला सकती है।

हमें संसार को–यूरोप के ही नही वरन् संसार के विचारशील मनुष्यों को–एक और महान् तत्व की शिक्षा देनी होगी कि समग्र संसार अनुसंधान प्रणाली किस प्रकार भौतिक दृष्टि से सारे जगत् का एकत्व सिद्ध कर रही है भौतिक दृष्टि से हम, तुम सूर्य, चन्द्र और सितारे आदि सब अनन्त जड़ समुद्र की छोटी–छोटी तरंगों के समान है। इधर सैकड़ों सदियों पहले भारतीय मनोविज्ञान ने जड़ विज्ञान की तरह यह प्रमाणित कर दिया है कि शरीर और मन दोनों ही समष्टि रूप में जड़ समुद्र की क्षुद्र तरंगें है, फिर एक कदम आगें बढ़कर वेदान्त में दिखाया गया है। कि जगत् के इस एकत्व भाव के पीछे जो आत्मा है वह भी एक ही है। समस्त ब्रह्माण्ड में केवल एक ही आत्मा विद्यमान है– सब कुछ एक उसी की सत्ता है। विश्व ब्रह्माण्ड की जड़ में वास्तव में एकत्व है। भारत की मूक जनता इसी जीवनदायी तत्व को जानकर उसका अनुपालन करती है और जीवजन्तु, पशु पक्षी पेड़ पौधों सभी से प्रेम करती है। यही एक ऐसा सत्य और अनन्त तत्व है जो तुममे, हममे और हम सब की आत्माओं में विद्यमान है। आत्मा का अनन्त एकत्व ही सब तरह के आचरण की नींव है। हममे और तुममे केवल भाई–भाई का ही संबंध नही है बल्कि वास्तविक बात तो यह है कि हम सभी एक है।

स्वामी विवेकानन्द 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना 1897 ई0 में मानव कल्याणर्थ थी। इसके माध्यम से सत्य का प्रचार और अनुष्ठान करना तथा जनता की सेवा और आत्मिक कल्याण के लिए साधन प्रदान करना तथा गरीबी, छुआ छूत का परिमार्जन और पतितों की सामाजिक अत्याचारों से रक्षा करनी चाहिए। रामकृष्ण मिशन के निम्न कार्य हैः–

1. चिकित्सालय स्थापना तथा चिकित्सीय सेवा
2. विद्यालयों की स्थापना, शिक्षा का प्रसार
3. मातृत्व सुरक्षा एवं कल्याण कार्य
4. पिछड़े वर्गो तथा श्रमिकों के उद्धार एवं उत्थान का कार्य
5. जनसमूह से सम्पर्क रखना जैसे चिकित्सालयों में मरीजों से मिलना, प्रकाशन करना व पुस्तक बेचना, वाचनालय चलाना ।
6. सहायता सेवा कार्य
7. विदेशों में धर्म–प्रचार करना, सिद्धान्तों को फैलाना ।
8. आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के साधन मार्ग को बताना ।

जाति संरचना में पद सोपान क्रम तथा विशेषाधिकार एवं सामाजिक धार्मिक, निर्योग्यताओं के स्वामीजी कट्टर विरोधी थे। उनकी दृष्टि में निम्न जातियों को निर्योग्ताओं से बांधे रखना सामाजिक बुराई है। बर्तमान युग शुद्रों सर्वहारा का युग है। अब उच्च वर्गो का कल्याण नीची जातियों की सहायता करने तथा उनके वैध अधिकारों को दिलाने मे है। यदि अपने को ब्राम्हण कह कर कोई जाति अपना स्तर उॅचा उठा सकती है तो उसे अपने को ब्राम्हण कहने दो। इस प्रकार स्वामी जी प्रदत्त सामाजिक प्रस्थिति के स्थान पर अर्जित प्रस्थिति को प्रतिष्ठित करना चाहते थे। उनके अनुसार एक और आदर्श है ब्राम्हण और दुसरी ओर दर्शन है। चाण्डाल को उठाकर उसे ब्राम्हण के स्तर पर ले जाना ही सम्पूर्ण कार्य है।

विवेकाननद मार्क्स के श्रमिक उद्यान सम्बन्धी विचार से प्रभावित थे और उसके परिणाम से भी सचेत थे। इसीलिए तो उन्होनें भविष्यवाणी की थी कि किसी न किसी रूप में समाजवाद निकट ही आ रहा है और वह दिन दूर नही जब शुद्रों के रूप में ही शुद्र शासक वर्ग बन जायेगे। समाज पर धर्म पुरोहितों सनिकों, व्यापारियों तथा श्रमिकों का क्रमशः शासन होता है। उपर की पहली तीन जातियों को अपने अवसर मिल चुके है अब शुद्रों के शासन करने का समय आ गया है। वे ऐसा अवश्य करेंगे, उन्हें कोई रोक नही सकता है। उनमें कार्य करने की क्षमता है। परिश्रम करते है और उनके श्रम के फल का अधिकांश दुसरे लोग छिन लेते है। अब वे इस तथ्य को जानने को है और अपने शोषण के विरूद्ध एक संयुक्त मोर्चा बना रहे है। उच्च वर्ग अब निम्न वर्गो का दमन नही कर सकेगे। अब उच्च वर्गो का हित इसी मे है कि वे निम्न वर्गो के अपने समुचित अधिकारों के प्राप्त करने में उनकी सहायता करें।

वर्तमान समय में विवेकानन्द की बात सच होती दिख रही है। अब शुद्र वर्गो का शासन कायम हो रहा है उच्च जातियॉ शुद्रों के सहायक के रूप में खड़ी दिखायी दे रही है। उदाहरणार्थ – उत्तर प्रदेश में मुख्य मंत्री के रूप में दलित महिला सुश्री मायावती और उनके साथ खड़े उच्च वर्ग के सतीश चन्द्र मिश्रा, रामवीर उपाध्याय, जो उच्च वर्गो का प्रतिनिधित्व करते है।

विवेकानन्द ने लिखा है कि यदि प्रकृति में असमानता है तो भी सबके समान अवसर होना चाहिए। यदि कुछ को अधिक कुछ को कम अवसर दिया जाय तो दुर्बलों को सबलों से अधिक अवसर दिया जाना चाहिए। दुसरे शब्दों में ब्राम्हण को शिक्षा की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि चाण्डाल को। यदि ब्राम्हण को एक अध्यापक की आवश्यकता है तो चाण्डाल को दस की है। पददलित, दरिद्र और अज्ञानी को ही अपना देवता समझा। विवेकानन्द इस सिद्वान्त के माध्यम से समाज के निम्न वर्गो का उत्थान करना चाहते थे जो लोकतांत्रिक समाजवाद के विभिन्न सम्प्रदायों में प्रतिपादित अवसर की समानता की धारणाओं को पुष्ट करता है।

देश के दीन–हीन दरिद्र और पिछड़े वर्गों की ओर ध्यान देते हुए विवेकानन्द ने भारतीय नारियों की ओर भी ध्यान दिया क्योंकि उनकी दशा पुरूषों से बहुत पिछड़ गयी थी। प्राचीन भारतीय में स्त्री–पुरूष में कोई ऊँच–नीच नहीं माना गया है। वे दोनों परस्परा पूरक माने गये है। उपनिषदों के काल में शिक्षा का व्यापक प्रचार था। अनेक स्त्रियों ने दर्शन और गणित जैसे विषयों में भी ख्याति प्राप्त की थी। विवेकानन्द ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि स्त्री पुरूष में भेदभाव कर रहे है। उन्होनें स्त्रियों की हीन दशा की ओर ध्यान आकर्षित किया और स्त्रियों को फिर से आगे बढ़ाने की आवश्यकता पर जोर दिया। वे नारी को शक्ति का अवतार मानते थे, जिसका सब प्रकार से सम्मान किया जाना चाहिए। वे इस सिद्धान्त को मानते थे यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता। भारतीय दर्शन नहीं बढ़ सकता। इस सम्बन्ध में उन्होंनें अमरीका का उदाहरण दिया और यह कहा कि वहां पर स्त्रियों के इतने अधिक सम्मान के कारण ही वह देश आज इतना आगे बढ़ सका है।

राष्ट्र की प्रगति उसी अनुपात में जानी जाती है, जिसमें उसके जनसमूह में शिक्षा और बुद्धि का प्रसार हो। भारत सर्वनाश का मुख्य कारण देश के कुछ थोड़े से मुट्ठी भर लोगों में शिक्षा और बुद्धि का सीमित होना है। यदि हमें फिर से उठना है तो यह समस्त जनसमूह में शिक्षा के प्रसार से ही हो सकेगा।'' अन्य सन्त–महात्माओं के समान विवेकानन्द देश के दीन–हीन पिछड़े हुए और अशिक्षित वर्ग को आगे बढ़ाने के लिए विशेष रूप से इच्छुक थे। उन्होंने कितने शब्दों में इनकी दयनीय स्थिति को जनता के सामने रखा। वे बार–बार निर्धन और अशिक्षितों के कष्ट को देखकर दुख से भर उठते थे। अमरीका में जाकर और वहाँ के सामान्य व्यक्ति से अपने देश के दीन–हीन व्यक्तियों की तुलना करने पर उनका यह कष्ट और भी बढ़ गया। देश के एक विशाल भाग की स्थिति के प्रति नेताओं की इस प्रकार की अवहेलना को वे एक भारी राष्ट्रीय पाप मानते थे। इन शोषित बुभुक्षित और अशिक्षित नर–नारियों की दशा में सुधार हुए बिना कोई भी राजनीति कोरा ढोंग है। विवेकानन्द ने तो यहाँ तक कहा, ''जब तक कि करोड़ो भूख और अशिक्षा में रहते हैं, मैं ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को गद्दार मानता हूँ जो कि उनके खर्च पर शिक्षा पाकर उनकी ओर कोई ध्यान नहीं देता।'' विवेकानन्द के इन शब्दों से नेताओं की आँखें खुल जानी चाहिए जो कि जनता के समर्थन से और जनता के पैसे से सब प्रकार की शान और शौकत में रहते हुए उसी जनता की ओर कोई ध्यान नहीं देते। भारत की जनता की सबसे बड़ा सेवा उनको शिक्षित बनाना है जिससे कि उनमें वैयक्तिकता का विकास हो, वे अपने को पहचानें और स्वयं आगे बढ़ने की चेष्टा करें शिक्षा से ही वे अपने चारों ओर के जगत से परिचित होगें और स्वयं अपना उत्थान करने के लिए आगे बढ़ेगे। शिक्षित व्यक्ति की आगे बढ़ने के लिए कहना नहीं पड़ता। वह स्वयं आत्म–स्फूर्ति से आगे बढ़ता है। भारत में समय–समय पर शिक्षा शास्त्रियों ने बार–बार देश में अशिक्षा को दूर करने की ओर ध्यान दिलाया। देश में शिक्षा बढ़ती रही है

विवेकानन्द जी समाज में व्याप्त सभी प्रकार के मतभेदों, द्वेषों, संघर्षो तथा लिंग भेद को समाप्त कर सामाजिक संगठन को मजबूत करना चाहते थे। और कहां करते थे कि यदि मै तीन करोड़ रूपया एकत्र कर सकूँ तो भारतीय जनता का उद्धार किया जा सकता है। एक बार उन्होने लिखा था कि दरिद्रों के लिए कार्य उत्पन्न करने हेतु भौतिक सभ्यता अपितु विलासिता भी आवश्यक है। मुझे इस ईश्वर में विश्वास नहीं है जो मुझे यहां रोटी नहीं दे सकता और स्वर्ग में शाश्वत आनन्द देता है। भारत को उठाना है, गरीबों को भोजन देना है, शिक्षा का प्रचार करना है, पोपलीला का अन्त करना है, पोपलीला का नाश हो, सामाजिक अत्याचार का नाश हो। अधिक रोटी प्रत्येक को अधिक अवसर। इस प्रकार सम्पूर्ण देश में सामाजिक समरसता को बनाये रखने का भरपूर प्रयास किया।

मानव समाज में अविद्या और अज्ञान की अत्यधिकता देखकर स्वामी जी विक्षुब्ध हुए थे। भारत की अवनति का सबसे महान् कारण यही है कि यहॉ पर जन – शिक्षा का अभाव है। जन साधारण को अपने कर्तव्य का ज्ञान नहीं, इससे यहां की प्राचीन परम्परा भी नष्टप्राय हो गई है। इस विचार से स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि शिक्षा गरीबों तक पहुँचे, वे चाहे खेत जोतने वाले हो, चाहे फैक्टरी में काम करने वाले हो, अथवा अन्य कोई भी हो ''गरीब, नीच तथा पतितों का इस देश में कोई मित्र नहीं है, उन्हें कोई सहायता नहीं मिलती है, वे ऊपर उठ नहीं सकते, वे प्रतिदिन नीचे गिरते जाते है, वे एक क्रूर समाज की चोटों का प्रतिदिन अनुभव करते रहते हैं। कितनी भी बड़ी राजनीति हो वह व्यर्थ है, जब तक भारतीय जनता एक बार फिर शिक्षित होने पेट भर खाने और अच्छी प्रकार रहने में समर्थ नहीं हो जाती है। इस कारण उन्होने प्रयत्नशील संन्यासियों एवं व्यक्तियों को गॉव – गॉव में और घर – घर में जाकर धर्म एवं धर्मेत्तर शिक्षा देने को कहा है। इस शिक्षा के लिए उनकी मातृभाषा को माध्यम बनाना चाहिए। इसी माध्यम से लौकिक, उपयोगी एवं आध्यात्मिक शिक्षा देने की कोशिश की जाए और प्रत्येक भारतवासी को सभ्य और सुशिक्षित करके अपनी संस्कृति, संस्कृत भाषा, अपने धर्म और कर्तव्य से पूर्ण परिचित कराया जाए, यही तो आत्मज्ञान है और उसकी पूर्णाभिव्यक्ति ही तो शिक्षा है। यदि जनसाधारण मे शिक्षा का

इस प्रकार प्रचार किया जाएगा तो निस्सन्देह भारत का भाग्य उज्ज्वल होगा और उन्नति के पथ पर वह अग्रसर होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाल, गुप्त एवं श्रीवास्तव, शैक्षिक विचार एवं व्यवहार के आधार, न्यू कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008–09, पृ0 109–10
2. भट्ट, जी0एस0, भारतीय सामाजिक विचार, पृ0 75–76
3. पाण्डेय, रवि प्रकाश, भारतीय सामाजिक विचार, विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराण्सी 1998, पृ0 331
4. विवेकानन्द, मार्डन इण्डिया, काम्पलीट वर्क्स, जिल्द 4, पृ0 321
5. तीसरा सन्दर्भ, पृ0 338
6. वर्मा, वी0पी0, क्रीटीक आफ मार्क्सियन सोशियोलाजी, व कलकत्ता रिव्यू, मर्च– जून 1995
7. कॉम्पलीट वर्क्स, जिल्द 4, पृ0 313